पाँचवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

विस्तार एष कथितः पृथिव्या भवतो मया। सप्ततिस्तु सहस्राणि द्विजोच्छ्रायोऽपि कथ्यते॥१॥
दशसाहस्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तम। अतलं वितलं चैव नितलं च गभस्तिमत्।
महाख्यं सुतलं चाग्र्यं पातालं चापि सप्तमम् ॥२॥
शुक्लकृष्णारुणा पीताः शर्कराः शैलकाञ्चना। भूमयो यत्र मैत्रेय वरप्रासादमण्डिताः॥३॥
तेषु दानवदैतेया यक्षाश्च शतशस्तथा। निवसन्ति महानागजातयश्च महामुने॥४॥
स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारदः। प्राह स्वर्गसदां मध्ये पातालाभ्यागतो दिवि॥५॥
आह्लादकारिणः शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रभाः। नागाभरणभूषासु पातालं केन तत्समम्॥६॥
दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च शोभिते। पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापि जायते॥७॥
दिवार्करश्मयो यत्र प्रभां तन्वन्ति नातपम्। शशिरश्मिर्न शीताय निशि द्योताय केवलम्॥८॥
भक्ष्यभोज्यमहापानमुदितैरपि भोगिभिः। यत्र न ज्ञायते कालो गतोऽपि दनुजादिभिः॥९॥
वनानि नद्यो रम्याणि सरांसि कमलाकराः। पुंस्कोकिलाभिलापाश्च मनोज्ञान्यम्बराणि च॥१०॥
भूषणान्यतिशुभ्राणि गन्धाढ्यं चानुलेपनम्। वीणावेणुमृदङ्गानां स्वनास्तूर्याणि च द्विज॥११॥
एतान्यन्यानि चोदारभाग्यभोग्यानि दानवैः। दैत्योरगैश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः॥१२॥
पातालानामधश्चास्ते विष्णोर्या तामसी तनुः। शेषाख्या यद्गुणान्वक्तुं न शक्ता दैत्यदानवाः॥१३॥
योऽनन्तः पठ्यते सिद्धैर्देवो देवर्षिपूजितः। न सहस्रशिरा व्यक्तस्वस्तिकामलभूषणः॥१४॥

सात पाताल लोकों का वर्णन

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— मैंने तुम्हें पृथिवी का विस्तार बतलाया। इसकी ऊँचाई सत्तर हजार योजन कही गयी हैं ॥१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! पाताल भी सात हैं अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान, महातल, सुतल और पाताल। ये सभी पाताल एक दूसरे से दश-दश हजार योजन की दूरी पर हैं ॥२॥ मैत्रेय ! जहाँ की भूमि श्वेत, काली, पीली शर्करामयी, प्रस्तरमयी तथा सुवर्णमयी भूमियाँ श्रेष्ठ भवनों से समलङ्कृत हैं ॥३॥ हे महामुने ! उन पातालों में दानव, दैत्य, यक्ष तथा सैकड़ो प्रकार की नागों की जातियाँ निवास करती हैं ॥४॥ एक बार पाताल लोक से स्वर्ग लोक में जाकर नारदजी ने देवताओं के बीच में कहा— पाताल लोक तो स्वर्गलोक से भी सुन्दर है ॥५॥ पाताल में रहने वाले नागों के भूषणों में आह्लादित करने वाली चमकती हुयी मणियाँ लगी हैं, अतएव पाताल के समान कौन सा लोक है ?॥६॥ इधर-उधर चलती हुयी दैत्यों एवं दानवों की कन्याओं से सुशोभित पाताल के विषय में किस मुक्त पुरुष की भी प्रीति नहीं हो सकती है ?॥७॥ वहाँ पर दिन में सूर्य की किरणें केवल प्रकाश फैलाती हैं आतप नहीं। रात्रि में चन्द्रमा की किरणें केवल चाँदनी विखेरती है, शैत्य नहीं ॥८॥ भक्ष्य, भोज्य तथा पान के कारण प्रसन्न सर्पों तथा दानवों आदि के बीते हुए समय का भी पता नहीं चल पाता है ॥९॥ वंन, नदियाँ कमलों से भरे मनोहर सरोवर पुंस्कोकिलों की मनोहर ध्वनि तथा मनोहर वस्त्र ॥१०॥ चमकते हुए आभूषण, सुगन्धित विलेपन, वीणा, वेणु तथा मृदङ्ग की मनोहर ध्वनि तथा तूर्य ये सब वस्तुएँ जो भाग्यशाली पुरुषों के लिए भोग्य हैं, उन सबों का दैत्य, दानव तथा सर्प जो पाताललोक वासी हैं उनके द्वारा उपभोग किया जाता है ॥११-१२॥ पातालों के नीचे भगवान् विष्णु का शेष नामक तामसी विग्रह जो विद्यमान है उसके गुणों का वर्णन दैत्य तथा दानव नहीं कर सकते हैं ॥१३॥ सिद्धजन जिन्हें अनन्त कहते हैं देवता तथा देवर्षि जिसका पूजन करते हैं, वह हजार शिरों वाले हैं।

फणामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन्दिशः। सर्वान्करोति निर्वीर्यान् हिताय जगतोऽसुरान् ॥१५॥
मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ सदैवैककुण्डलः। किरीटी स्रग्धरो भाति साग्निः श्वेत इवाचलः ॥१६॥
नीलवासा मदोत्सिक्तः श्वेतहारोपशोभितः। साभ्रगङ्गाप्रवाहोऽसौ कैलासाद्रिरिवापरः ॥१७॥
लाङ्गलासक्तहस्ताग्रो बिभ्रन्मुसलमुत्तमम्। उपास्यते स्वयं कान्त्या यो वारुण्या च मूर्त्तया ॥१८॥
कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानलशिखोज्ज्वलः। सङ्कर्षणात्मको रुद्रो निष्क्रम्यात्ति जगत्त्रयम् ॥१९॥
स बिभ्रच्छेखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम्। आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषसुरार्चितः ॥२०॥
तस्य वीर्यं प्रभावश्च स्वरूपं रूपमेव च। न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं च त्रिदशैरपि ॥२१॥
यस्यैषा सकला पृथ्वी फणामणिशिखारुणा। आस्ते कुसुममालेव कस्तद्वीर्यं वदिष्यति ॥२२॥
यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः। तदा चलति भूरेषा साब्धितोया सकानना ॥२३॥
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः किन्नरोरगचारणाः। नान्तं गुणानां गच्छन्ति तेनानन्तोयमव्ययः ॥२४॥
यस्य नागवधूहस्तैर्लेपितं हरिचन्दनम्। मुहुः श्वासानिलापास्तं याति दिक्षूदवासताम् ॥२५॥
यमाराध्य पुराणर्षिर्गर्गो ज्योतींषि तत्त्वतः। ज्ञातवान्सकलं चैव निमित्तपठितं फलम् ॥२६॥
तेनेयं नागवर्येण शिरसा विधृता मही। बिभर्ति मालां लोकानां सदेवासुरमानुषाम् ॥२७॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे द्वितीयेंऽशे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

शेषनाग निर्मल स्वस्तिक चिह्नों से सुशोभित हैं ॥१४॥ वे अपनी फणाओं में विद्यमान मणियों के द्वारा दिशाओं को प्रकाशित करते हैं तथा जगत् का कल्याण करने के लिए सभी असुरों को पराक्रमहीन बनाते हैं ॥१५॥ मद के कारण उनके नेत्र सदा धूर्णित होते रहते हैं। वे अपने एक ही कान में कुण्डल धारण करते हैं, किरीट तथा माला धारण करने वाले वे अग्नि से युक्त कैलास पर्वत के समान सुशोभित होते हैं ॥१६॥ नीला वस्त्र धारण करने वाले मदमत्त तथा श्वेत हार से सुशोभित मेघ तथा गङ्गा नदी से सुशोभित वे दूसरे कैलास के समान सुशोभित होते हैं ॥१७॥ जो अपने हाथ में हल तथा मूसल धारण करते हैं उनकी मूर्तिमती, कान्ति तथा वारुणी देवियाँ उपासना करती है।॥१८॥ कल्प के अन्त में विषाग्नि से सुशोभित जिनके मुख से निकलकर सङ्कर्षण नामक रुद्र त्रैलोक्य का संहार कर देते हैं ॥१९॥ समस्त देवताओं से पूजित वे शेष भगवान् सम्पूर्ण पृथिवी को अपने शिर पर मुकुट के समान धारण करने हुए पाताल के मूल में विद्यमान हैं ॥२०॥ उनके प्रभाव, पराक्रम, स्वरूप तथा रूप को देवता भी नहीं जान सकते हैं ॥२१॥ जिनकी फणाओं की मणियों की कान्ति से लाल रङ्ग की बनी हुयी पृथिवी फूलों की माला के समान विद्यमान है, उनके पराक्रम को कौन कह सकता है ?॥२२॥ जिस समय मदमत्त नेत्रों वाले शेष भगवान् जम्माई लेते हैं, उस समय समुद्र तथा वनों से युक्त यह पृथिवी काँपने लगती है ॥२३॥ उन अनन्त भगवान् के समस्त गुणों को गन्धर्व, अप्सराएँ, सिद्ध, किन्नर तथा सर्प भी नहीं जान पाते हैं, अतएव वे अनन्त कहलाते हैं ॥२४॥ नागवधुओं द्वारा लेपित हरिचन्दन, उनकी श्वास वायु से छूट-छूटकर दिशाओं को सुगन्धित बनाता रहता है ॥२५॥ जिनकी आराधना करके गर्ग महर्षि ने सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र को तथा शकुनों एवं अपशकुनों को जाना था ॥२६॥ वे ही नागश्रेष्ठ अपने शिर पर पृथिवी को धारण करते हैं। वे ही देवताओं, मनुष्यों तथा असुरों के लोकरूपी माला को धारण करते हैं ॥२७॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के द्वितीय अंश के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥